बायोटेक्नॉलॉजी और देश की सेहत

डॉ. डी. बालसुब्रमण्यन

नवम्बर, 2000 में संक्रामक रोगों पर एक अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन हैदराबाद में सम्पन्न हुआ। मॉलिक्यूलर एपिडेमियोलॉजी और इवोल्यूशनरी जिनेटिक्स ऑफ इन्फेक्शियस डिसीज़ (MEEGID-5) मीगिड नामक यह सम्मेलन बैठकों की शृंखला की पांचवीं कड़ी था। और मलेरिया, दस्त, हैज़ा व एड्स जैसे संक्रामक रोगों के आण्विक रोग प्रसार और विकासात्मक जैविकी पर केन्द्रित था।

अन्य संस्थानों के अलावा इस राष्ट्रीय स्तर के सम्मेलन को भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद् (आई.सी.एम.आर.), भारतीय जैव तकनीकी विभाग (डी.बी.टी.) व हैदराबाद के (डी.बी.टी. द्वारा अनुदान प्राप्त) सेंटर फॉर डीएनए फिंगरप्रिंटिंग एण्ड डायग्नोस्टिक संस्थान (सी.डी.एफ.डी.) ने प्रायोजित किया था। सम्मेलन में उक्त क्षेत्र में अनुसंधान कर रहे बारह से भी अधिक चिकित्सकों ने अपने पर्चे पढ़े और अपने निष्कर्षों को प्रस्तुत किया। इससे भारत में इस क्षेत्र में हो रहे सार्थक व सक्रिय काम की झलक मिलती है। यहां यह तथ्य गौरतलब है कि देश भर में चल रहे इन अनुसंधान कार्यों को आई.सी.एम.आर. या स्वास्थ्य मंत्रालय के भरोसे छोड़ देने की बजाय भारत का जैव तकनीकी विभाग इनको लगातार मदद कर रहा है।

आधुनिक जैव चिकित्सकीय शोध में संक्रामक रोगों की हैसियत एक देहाती चचेरे भाई की सी होती है। भारत में हर साल होने वाली 5 करोड़ मौतों में से 2.5 करोड़ मौतें संक्रामक रोगों के कारण होती हैं। विकासशील देशों का एक बड़ा तबका इन संक्रामक रोगों की भेंट चढ़ जाता है। वहीं विकसित देश ऐसे रोगों से लगभग मुक्त हैं। इसलिए वहां पर संक्रामक रोगों सम्बंधी अनुसंधान कार्यों पर उतना ध्यान नहीं दिया जा रहा है।

विकासशील देशों में स्वच्छ पेयजल और बेहतर सार्वजनिक स्वच्छता जैसे सस्ते उपाय ही संक्रमण रोकने के लिए पर्याप्त हैं। श्रीलंका ने स्वच्छ पेयजल और बेहतर स्वच्छता के ज़रिए अपने यहां शिशु मृत्यु दर तथा रुग्णता को कम किया है। भारतीय उपमहाद्वीप में श्रीलंका की शिशु मृत्यु दर एवं रोगियों की संख्या सबसे कम है। यदि हमारे राज्यों, ज़िलों व शहरों के शासकीय निकाय, स्वच्छ पेयजल, प्रभावी सीवरेज (मल निकासी) व्यवस्था तथा जनस्वास्थ्य सुविधाओं पर ही ध्यान दें तो इन संक्रामक रोगों की संख्या में उल्लेखनीय गिरावट आ सकती है। इक्कीसवीं सदी के भारत में शुद्ध पेयजल, प्रभावी सीवरेज प्रणाली तथा जन स्वास्थ्य सुविधाओं को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जानी चाहिए। इन उपायों की लागत भी कम है और एवज़ में हमें स्वस्थ व समर्थ नागरिक मिलेंगे।

यह तो साफ है कि भारत जैसे राष्ट्रों में अनुसंधान सम्बंधी पैसा रोग फैलाने वाले कीटाणुओं पर रोक लगाने के उपायों पर खर्च किया जाना चाहिए। संक्रामक एजेंटों को वश में किया जा सकता है पर ये ऐसे माइक्रोब (जीवाणु) होते हैं जो देखते ही देखते फल-फूलकर अपनी आबादी बेतहाशा बढ़ा लेते हैं। नतीजतन उत्परिवर्तन व जैविक अजूबे फटाफट होते हैं और ऐसे स्वांगी पैदा हो आते हैं जो पर्यावरण के साथ अप्रत्याशित तरीके से पटरी बैठा लेते हैं। इसी सिलसिले में जैविकी इन तमाम चीज़ों को समझने और उनसे किला फतह करने में मददगार हो सकती है।

मीगिड सम्मेलन भी इन रोगाणुओं की विकासात्मक जैविकी से जुड़े पहलुओं पर गौर करता है।

मीगिड-5 में आई.सी.एम.आर. के प्रोफेसर निर्मल गांगुली ने दो भारतीय वैज्ञानिकों के काम पर रोशनी डाली। पहला काम पुणे के नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ

वाइरोलॉजी, इंडियन पोल्ट्री रिसर्च सेंटर तथा इंग्लैण्ड की एक प्रयोगशाला ने किया है। यह अध्ययन भारत के कुछ भागों में विचित्र तरीके से बड़ी संख्या में मर रहे गिद्धों से सम्बंधित है। अध्ययन से पता चला है कि हत्यारा वायरस *विग्नेवायरस* परिवार का एक परिवर्तित रूप है। एक बार जो इस वायरस की पहचान व गुण पता चले तो इस रोग का उपचार भी सम्भव हो जाएगा।

डॉ. गांगुली द्वारा उल्लेखित दूसरा अनुसंधान जीवों के विश्वव्यापी जाल में पैठी सहसम्बद्धता (इंटरकनेक्टिविटी) को रोशन करता है। जैसे-जैसे अलनीनो समुद्री जलधाराओं ने समुद्र को गरमाया, जूओप्लैंकटन नामक समुद्री वनस्पति बढ़ी। साथ ही इनमें बसेरा करने वाले हैज़ा कीटाणुओं की भी आबादी बढ़ी। हाल ही में बांग्लादेश तथा उत्तरपूर्वी राज्यों में हैज़े से हुई मौतों में बढ़ोत्तरी को इसी घटनाक्रम से जोड़ा जा रहा है। इसी के अंतर्गत *वाइब्रो कॉलराइ* की विकासात्मक उत्पत्ति उभरकर आई और कलकत्ता के डॉ. जी.बी. नायर ने इस रोगाणु का एक नया रूप खोज निकाला।

सहयोग दिया था। इसी तरह डीबीटी द्वारा सहायता प्राप्त नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ इम्यूनोलॉजी के डॉ. जी.पी. तलवार को कुष्ठ रोग का वैक्सीन विकसित करने में सफलता मिली। उन्होंने *लेप्रोवक* नामक वैक्सीन बनाया है। इस वैक्सीन का क्लीनिकल परीक्षण सफल हो चुका है और इसे दवा कंपनी 'सिपला' को बेच दिया गया है। इस वैक्सीन से अब तक तकरीबन दस हज़ार लोगों को प्रतिरक्षित किया जा चुका है।

इसी तरह हैदाराबाद के 'शांता बायोटेक्निक्स' ने हिपेटाइटिस बी रोधी वैक्सीन *शनवक* विकसित की है। कम्पनी के प्रबंध निदेशक डॉ. वाराप्रसाद रेड्डी मानते हैं कि डीबीटी ने इस वैक्सीन को प्रयोगशाला से बाज़ार तक पहुंचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इसके अलावा जापानी एन्सेफेलाइटिस तथा रेबीज़ के प्रतिरोधी वैक्सीन भी विकसित किए जा रहे हैं। जल्द ही ये वैक्सीन दवाइयों की दुकानों पर मिलने लगेंगे।

उक्त उदाहरणों से पता चलता है कि जैव तकनीक भारत के स्वास्थ्य को सुधारने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा

विकासशील देशों में स्वच्छ पेयजल और बेहतर सार्वजनिक स्वच्छता जैसे सस्ते उपाय ही संक्रमण रोकने के लिए पर्याप्त हैं। श्रीलंका ने स्वच्छ पेयजल और बेहतर स्वच्छता के ज़रिए अपने यहां शिशु मृत्यु दर तथा रुग्णता को कम किया है। भारतीय उपमहाद्वीप में श्रीलंका की शिशु मृत्यु दर एवं रोगियों की संख्या सबसे कम है। यदि हमारे राज्यों, ज़िलों व शहरों के शासकीय निकाय, स्वच्छ पेयजल, प्रभावी सीवरेज (मल निकासी) व्यवस्था तथा जनस्वास्थ्य सुविधाओं पर ही ध्यान दें तो इन संक्रामक रोगों की संख्या में उल्लेखनीय गिरावट आ सकती है।

उक्त दो उदाहरण संक्रामक रोग फैलाने वाले कपटी रोगाणुओं से निपटने के लिए आधुनिक पद्धतियां अपनाने की ज़रूरत दर्शाते हैं और यहीं जैव तकनीकी विभाग (डीबीटी) की भूमिका के महत्व का भी पता चलता है। कॉलरा (हैज़ा) जीवविज्ञान में डीबीटी ने कलकत्ता के एक समूह तथा डॉ. अमित घोष, चंडीगढ़, को अनुसंधान में सहयोग दिया। डॉ. घोष कॉलरा वैक्सीन बनाने में सफल रहे। इस वैक्सीन के क्लीनिकल परीक्षण का पहला चरण अभी देश में चल रहा है।

इससे पहले कलकत्ता के स्वर्गीय डॉ. जे. दास को भी डीबीटी का सहयोग मिल चुका है। डॉ. जे. दास को हैज़ा कीटाणु के जिनोम का नक्शा बनाने में डीबीटी ने रही है। इनसे यह भी पता चलता है कि विभिन्न एजेंसियों के साथ मिलकर काम करने के नतीजे अक्सर अच्छे ही निकलते हैं।

सरकारी विभाग अपने दायरे में सीमित रहने के लिए जाने जाते हैं। 1980 के दशक में डीबीटी के शुरूआती सालों में इसके कर्ताधर्ता डॉ. एस. रामचंद्रन थे। उन्होंने डीबीटी को अन्य विश्वविद्यालयों राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं से जोड़ा तथा मानव संसाधनों एवं विशेषज्ञों के केन्द्र विकसित किए। डीबीटी की प्रयोगशालाएं मौजूदा सचिव डॉ. मंजु शर्मा के नेतृत्व में डीबीटी का यह सुखद 'संक्रमण' गांवों और तमाम तबकों तक फैला चुकी हैं।

बैंगलोर के इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस को

भारत में सूचना व तकनीकी को बढ़ावा देने की शुरुआत एक पीढ़ी पूर्व आई.आई.टी. एवं आई.आई.एम. के जन्म के साथ हो चुकी है। बाद में इसमें एन.आई.आई.टी. व एप्टेक जैसी अन्य व्यावसायिक एजेंसियां भी शामिल हो गईं। इसी तरह बायोटेक्नॉलॉजी के क्षेत्र में विशेषज्ञता व मानव संसाधन विकसित करने में डी.बी.टी. की भूमिका अहम हो सकती है।

डीबीटी से अब तक 20 करोड़ रुपए की सहायता मिल चुकी है। इस सहायता से वैज्ञानिकों को डीएनए सीक्वेंसर, बायलॉजीकल मास स्पेक्ट्रोमीटर, प्राणी सदन, उच्च शक्ति कम्प्यूटरों से युक्त बायोइंफॉर्मेटिक्स सुविधा, कॉनफोकल माइक्रोस्कोप सहित ऐसी तमाम उम्दा और ज़रूरी सुविधाएं मुहैया हुई हैं, जिसके ज़रिए वे जापानी एन्सेफेलाइटिस और रेबीज़ वैक्सीन जैसे ठेठ सरहदी विषयों पर श्रेष्ठतम शोध कार्य कर सकते हैं।

इसी तरह डीबीटी ने सी.सी.एम.बी. हैदराबाद व आई.आई.सी.बी. कलकत्ता को भी आर्थिक समर्थन दिया है। डीबीटी की इस मदद से आई.आई.सी.बी. न सिर्फ हैज़ा के जिनोम का खाका बनाने में सफल हुए बल्कि हाल ही में अल्फा फीटोप्रोटीन नामक दवाई के उत्पादन की पद्धति को भी विकसित करने में उसे कामयाबी मिली है।

विभिन्न एजेंसियों को मानव संसाधन विकसित करने की दिशा में गुणात्मक समर्थन देना भी डीबीटी का एक विशिष्ट पहलू रहा है। डीबीटी द्वारा स्थापित देशभर में फैला बायोइंफॉर्मेटिक्स का नेटवर्क तथा स्नात्कोत्तर डिग्री कार्यक्रम भी बायोटेक्नॉलॉजी को बढ़ावा दे रहा है। भारत में सूचना व तकनीकी को बढ़ावा देने की शुरुआत एक पीढ़ी पूर्व आई.आई.टी. एवं आई.आई.एम. के जन्म के साथ हो चुकी है। बाद में इसमें एन.आई.आई.टी. व एप्टेक जैसी अन्य व्यावसायिक एजेंसियां भी शामिल हो गईं। इसी तरह बायोटेक्नॉलॉजी के क्षेत्र में विशेषज्ञता व मानव संसाधन विकसित करने में डीबीटी की भूमिका अहम हो सकती है। डीबीटी कुछ उद्योगों को सीधा मदद देने के अलावा शांता बायोटेक्निक्स व भारत बायोटेक को भी परोक्ष मदद कर रही है। जैव तकनीकी एक तेज़ी से बढ़ता हुआ विषय है। इस लिहाज़ से विश्वभर के विशेषज्ञों की सलाह एवं उनसे बातचीत भी काफी उपयोगी है। इसी के मद्देनज़र डीबीटी ने ओवरसीज़ साइंटिफिक एडवाइज़री काउंसिल का गठन किया है।

भारतीय वैज्ञानिक अब भी पैसे की पूरी-पूरी कीमत देने लायक उत्पाद बना सकते हैं। उदाहरण के लिए हिपेटाइटिस बी के टीके का देशज विकास व उसका विपणन भारत में ही हुआ है। इसकी कुल लागत 150 लाख डॉलर से भी कम है। *लेप्रोवक* के उत्पादन व विपणन की लागत तो और भी कम है।

भारत में आधुनिक बायोटेक्नॉलॉजी फकत एक पीढ़ी पुरानी है। इसका एक बड़ा हिस्सा कृषि और बागवानी तक ही सीमित रहा है। यह सब माहेश्वरी, जौहरी, मोहन राम वासिल जैसे वनस्पति वैज्ञानियों द्वारा की गई महत्वपूर्ण खोजों का एक सहज परिणाम है। इन वैज्ञानिकों के कारण टिश्यू कल्चर और नकदी फसलों, आलंकारिक वनस्पतियों, मसालों और सब्ज़ियों सम्बंधी अनुसंधान काम आगे बढ़ा। आज देश के लगभग हर बड़े शहर में वनस्पति जैव तकनीकी कंपनियां टिश्यू कल्चर तथा पौधा घर बनाने के काम में लगी हुई हैं। इसी के चलते अब ठेठ हैदराबाद में भी हिसालू (स्ट्रॉबेरी) जैसे 'विदेशज' आहार खरीदे जा सकते हैं। इसके अलावा डीबीटी ने ट्रांसजेनिक के ज़मीनी परीक्षणों और उनके लायसेंस सम्बंधी नियामक प्रक्रियाएं भी बहाल की हैं।

उक्त जानकारियों से यह पता लगता है कि जिनॉमिक्स केवल बायोटेक्नॉलॉजी की ही सेवा में हाज़िर नहीं है। जीव विज्ञान के हर क्षेत्रों को इससे मदद मिल सकती है। जब विभिन्न जीवित प्राणियों/पौधों (जिनमें मानव भी शामिल रहेगा) की सभी जींस पर एक क्रम में विचार करना संभव हो जाएगा, तो बायोटेक्नॉलॉजी के स्वरूप और दवाइयों में इसका क्या असर पड़ेगा, इस पर काफी बातें हो रही हैं। हालांकि अभी तो हालत यह है कि हमारे पास किताब है और हमें उसे पढ़ना, सीखना, समझना और महसूस करना है। अभी जीवविज्ञान में बहुत से काम किए जाने बाकी हैं। इस दिशा में समय के साथ चलने की तथा औरों के साथ मिलकर काम करने की इच्छुक डीबीटी जैसी भारतीय विज्ञान संस्थाओं को और भी मजबूत करने की ज़रूरत है। ***(स्रोत फीचर्स)***